International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(4): 216-218

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(4): 216-218
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 06-05-2021
Accepted: 09-06-2021

**निरंजन कुमार झा**
ग्राम–बनसारा, पो0– पचाढ़ी,
जिला–दरभंगा, बिहार, भारत

**Corresponding Author:**
**निरंजन कुमार झा**
ग्राम–बनसारा, पो0– पचाढ़ी,
जिला–दरभंगा, बिहार, भारत

# श्रीराम आधारित वैदिक एवं लौकिक साहित्य में नारी का आदर्श

## निरंजन कुमार झा

**प्रस्तावना**

भारतीय संस्कृति के निर्माण और विकास मे नारी का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ऋग्वेद में स्त्रियों की श्रेष्ठता का परिचय विद्या के क्षेत्र में भी दिग्दर्शित है। ब्रह्मवादिनी घोषा ने ऋग्वेद के दमश मण्डल के 39–40 वे सूक्तों का साक्षात्कार किया, इन्द्रणी ने इसी मण्डल के सूक्त की रचना की, अपाला एवं रोग्मा के साथ सूर्य पूत्री सूर्या ने भी मंत्रों की रचना की। इसी वेद के 151 वें सूक्त की ऋषिका पुलोग पुत्री राची कही गयी है, अपने पति अगस्त्य के साथ लोपामुद्रा ने 179 वें सूक्त का दर्शन किया।

नारी अपनी उपार्जित एवं उपयोगी विद्या से संतान, परिवार, निकट के पर्यावरण एवं समाज को पूर्णलाभ प्रदान करती थी। वेदों का सिंहावलोकन करने से प्रमाणित होता है कि वैदिक कालीन समाज में नारी का अतिशय सम्मान था और उसे पारिवारिक संगठन में पूर्ण स्वतंत्रता थी।

नारी की प्रथम अवस्था पुत्री के रुप में प्रगट होती है। यद्यपि वैदिक संहिताओं में स्त्रियों के मातृ एवं पत्नी पक्ष को ही प्रकृष्ट रूप में चित्रित किया गया है, किन्तु उनके पुत्री एवं भगिनी रू॰ की भी झलक दिखाई गयी है।

मम पुत्राः शत्रूहणोऽर्थो मे दुहिता विराट्[1] मंत्र में दुहिता के महनीय महत्व की उद्शोधणा है। अथवा ऋषि ने कन्या के यज्ञ एवं वर्चस्व को स्वीकार किया है–[2] ''ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्''–[3] अर्थात् कन्या स्वयं पति का वरण कर सकती है।

कुछ सूक्तों में स्त्री देवता एवं पुरूष देवता के बीच भगिनी स्वरूप का चित्रण मिलता है।[4] तो कतिपय सूक्तों में भ्राता–भगिनी के परस्प शारीरिक संबंधो का भी संकेत हैं।[5] जिसकी व्याख्या कई व्याख्याकारों ने भिन्न–भिन्न ढंग से की है।

तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि पिता के धन पर कन्या का किसी प्रकार का अधिकार नहीं होता है।[6] उत्तर वैदिक सामाजिक जीवन में पुत्र की अपेक्षा पुत्री की अवस्था इस प्रकार हीन हो गयी कि उसे दुःख एवं संताप का मूल कारण माना जाने लगा। ऐतरेय ब्राह्मण में पुत्री को कृपण भी कहा गया है।[7] इसका भाष्य करते हुए सायण ने लिखा है कि वह जन्म के समय अपने संबंधियों को कष्ट देती है, विवाह के समय अर्थहानि का कारण बनती है और विवाह के समय यौवन प्राप्त होने पर अनेक दोषों के कारण कुल को कलंकित करती है।[8] पूर्वमध्ययुगीन विद्वान् हेमचन्द्र ने भी उसे शोककरी कहा है।[8] महाकवि वाण ने भी लिखा है कि पुत्री उत्पन्न होकर पिता को चिंता में डाल देती है।[9] वाल्मीकि ने भी एक स्थल पर ऐसा ही विचार व्यक्त किया है–

''सम्मान की इच्छा रखने वाले सभी लोगों के लिए कन्या का पिता होना दुख का ही कारण होता है, क्योंकि यह पता नहीं चलता कि कौन और कैसा पुरूष कन्या का वरण करेगा। माता के पिता के और जहाँ कन्या ही जाती है उस पति के कुल तो भी कन्या सदा संशय मे डाले रहती है।[10]

आनन्दरामायण में महान पिता की कन्या के योग्य जामाता का नहीं होना भी एक संकट उत्पन्न किया गया है।[11] साथ ही इसी रामायण में कहा गया है– यदि पुत्र होता है तो क्षणमात्र में अपने कुल को ''पुँ'' नामक नरक से तार देता है, इसके विपरीत कन्या दुराचार करके अपने पित तथा पति दोनों कुलों को क्षणभर में नरक में गिरा देती है।[12] किन्तु आश्चर्य तब होता है जब आनन्दरामायणकार कहते हैं कि राजा पद्माक्ष विष्णु पत्नी लक्ष्मी को पुत्री के रू॰ में प्राप्त करने के लिए कठोर तप करता है।[13] फिर कन्या उत्पन्न ही न हो इसके उपया पर विस्तार से विचार किया गया है।[14]

दो प्रकार के विचार नारियों के पक्ष एवं विपक्ष में प्रायः सर्वत्र प्रस्तुत किए गये हैं। एक जगह महाभारत में कहा गया है कि कन्या में सर्वदा लक्ष्मी निवास करती है।[15] तो पुनः कन्या को कष्ट का साकार रूप ही कहा गया है।[16] वौधायन धर्मसूत्र में कहा गया है– ''मासिक धर्म को प्राप्त कन्या का तीन वर्ष तक विवाह न करने से कन्या के माता–पिता या संरक्षक वर्ग भ्रूण हत्या के दोषी होते है।[17]

आनन्दरामायण में ही सीता, चंपिका, सुमति, हेमा आदि कन्याओं का अपने परिवार और समाज से वात्सल्यप्रेम तथा सम्मान सर्वदा प्राप्त होता रहा। वाल्यकाल में जानकी शिव धनुष को लकड़ी का घोड़ा बनाकर खेला करती थी, इस व्यवहार से परशुराम सीता को लक्ष्मी समझते रहे।[18]

अद्वैतभाव के प्रदर्शन क्रम में दो अक्षरों का मंत्र राम की महत्ता प्रदर्शित करने का कवि की आकांक्षा रही हो अथवा शूद्रों के साथ–साथ स्त्रियों की वेदादि पाठ तथा ऑकार के उच्चारण की वर्जना, जो उस समय मे प्रायः मान्य हो गयी थी, के कारणं कहा गया–

''नान्यो मन्त्रोऽस्ति नारीणां शूद्रांचापि भो द्विज''[19] अर्थात् स्त्रियों और शूद्रों के लिए इसकी सिवाय और कोे मंत्र नहीं है। एक कथन ऐसा भी है कि पुरूष के समान वेष धारण कर, अनेक प्रकार के अलंकार पहनकर, रंग विरंगे शस्त्र लिए, अपना मुख छिपाए और घोड़े आदि विविधि सवारियों पर सवार स्त्रियाँ युद्ध करने चली जा रही थी।[20] एक क्षेत्र विशेष ऐसा भी वर्णित है जहाँ पर स्त्रियों का ही राज्य था, स्त्रियाँ ही वहाँ की प्रजा पर शासन करती थी।[21]

व्यवहारसिद्ध वचन को उद्धृत करते हुए मनु ने कहा कि कुमारावस्था में नारियों की रक्षा पिता करता है, विवाहोपरान्त युवावस्था में पति के अधीन रक्षित होती है तदुपरान्त पुत्र के जबान होने पर माता पुत्राधीन रक्षित होती है, इस प्रकार नारी किसी भी अवस्था में स्वतंत्रता का अनुभव नहीं करती है–

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।[22]

वैदिक परिवार का मंगल, सौभाग्य और कल्याण सब कुछ पत्नी पर आधारित था और आज भी ''गृहिणी गृह मुज्यते'' की भव्य–भावना का सदादर समाज में परिलक्षित होता है। आलोच्य रामायण में भी कहा गया है कि भार्या के समान कोई सुख नहीं है।[23] तथा कोई कन्या सभी शुभ लक्षणों से युक्त होती हुई भी जीवत्पतिका न हो तो वह शोभाहीन होती है।[24] सीता से वियुक्त होने पर रामचन्द्र सीता की भाँति सांसारिक भोगों को त्याग देते है और तपस्वियों के समान अपना जीवन बीताने लगते है।[25] निर्वासित सीता के बिना अयोध्यापुरी सर्वथा श्रीहीन हो गयी थी, ऐसी लग रही थी जैसे स्त्री के बिना घर।[26] यहाँ स्त्री (सुदक्षिणा) के साथ रहने पर राजा दिलीप का अनुराग अवलोकनीय है। एक वेश्यागामी पति ठोकरें खाने के बाद अपनी पत्नी के पास आकर विनतभाव से निवेदनपूर्वक कहता है ''शास्त्र कहता है कि जो पापी शीलवती भार्या का निरादर करता है वह सत्रह जन्म तक नपुंसक होकर जन्म लेता है। अच्छे पुरष (सभ्य समाज) ऐसे दुश्चरित मनुष्यों की रातदिन निदां करते है। तुम जैसी सती–साध्वी नारी का अपमान करके मुझे किसी नीच योनि में जाना पड़ेगा। उसकी उदारचेता पत्नी क्षमा कर देती है।[27] भार्या का यह उदात्तचरित्र वैदिक काल से आनन्दरामायण काल तक तथा आज भी देखने को मिलता है।

स्कंदपुराण में नारी के पत्नी रूप की चर्चा विस्तार से हुयी है– इसके अनुसार पति ही नारियों के लिए परम भूषण समझा जाता था–

''पतिदेव हि नारीणां भूषण परमुच्यते।[28] पति ही नाथ, गुरू, परमदेवता, स्वामी, मित्र और परमपद माना जाता था। पति संतुष्ट रहे तो उस स्त्री के लिए सभी देवता भी संतुष्ट समझे जाते थे, यदि पति पत्नी से विमुखं रहता था तो उस तत्नी के लिए देवता भी विमुख समझे जाते थे।[29]

आलोच्य रामायण मे भी कहा गया है कि स्त्रियों के लिए पति के सिवाय और कोई देवता नहीं होता और पति के बिना कोई गति भी नहीं है।[30]

वाल्मीकि की यह मान्यता है कि इस लोक में पिता आदि के द्वारा जो स्त्री जिस पुरूष को अपने धर्म के अनुसार जल से संकल्प करके दी जाती है वह मरने के बाद परलोक में भी उसकी पत्नी है।[31] वही अयोध्याकाण्ड में भी सीता की इस भावना का संकेत मिलता है कि मरने के बाद भी उसका शुभ–मिलन राम से ही हो।[32] उसी काल में दुष्टा[33] तथा निरंकुषं[34] स्त्रियों का भी उल्लेख हुआ है। आनन्दरामायण में भी लोकापवाद का भय था[35] तो सीता जैसी शती–साध्वी नारी का रावण के द्वारा हर लेने पर सामाजिकों के मन मे कुत्सित भाव का उत्पन्न होना[36] स्त्री के प्रति क्रोधावस्था में व्यमिचारिणी और रंग का प्रयोग[37] करना चाकित करता है।

''पातिव्रत्यं सदा स्त्रीभिः पालनीयं धियेति च[38] अर्थात् स्त्रियो को अपनी बुद्धि से पातिव्रत धर्म की रक्षा करनी चाहिए ऐसा उपदेश देते हुए इतना तक प्रतिबंधित किया गया है कि पतिव्रता स्त्री किसी सुगधित पुष्प आदि को पति से पूर्व न सूँघे।[39] रावण के साम्राज्य में भी नारी चरित्रगत दोष की संभावना से भी दंडित हाने योग्य मानी जाती थी।[40] इस प्रकार वर्णित दृश्यों का अवलोकन करने क उपरान्त साक्ष्य यही कहता है कि आनन्दरामायणं के रचना काल में भी नारियाँ अपने परिवार और समाज में विश्वास और संशय के बीच जीवन यापन करती थी। उसके शील का महत्व ही इतना था कि आँख से ओझल होते ही कुत्सित आशंका के कीचड़ में फँस जाती थी, जो पुरूषों की ओछी मानसिकता को भी प्रदर्शित करती है। सीता के साथ राम ने लोकापवाद से बचने के लिए जो व्यवहार किया वह राम के द्वारा बारंबार कहे जाने पर कि एक पत्नी व्रती हूँ, को इसलिए विखंडित करता है कि सीता का पातिव्रत्य परीक्षोपरान्त भी असंदिग्ध रहा, जबकि राम ने तो एक बार भी आनी परीक्षा नहीं दी। यह पुरूष प्रधान समाज की सानसिकता को उजागर करता है। और पूर्वमध्यकाल से चली आ रही नारियों की शोषण और शोभन प्रवृत्ति आनन्दरामायण में भी दृष्टिगोचर होता है।

जबकि, स्त्री से ही मनुष्य की उत्पत्ति होती है। वैदिक मान्यताओं के अनुसार एकाकी प्रजापति ने सृष्टि रचना की कामना से प्रेरित होकर स्वयं को दो भागों में विभक्त किया उनका वाम भाग स्त्री और दहिन भाग पुरुष के रूप में प्रगट हुआ–

''द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरषो भवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः।।

प्रजापति द्वारा विभग्त स्वरूप की परिणति अर्द्धनारीश्वर रूप में है। प्राणि– समन्वित इस मानव सृष्टि के आधार है– माता–पिता/पार्वती और परमेश्वर इस मातृत्व तथा पितृत्व भाव के प्रतीक है। सारा सृजन–व्यापार उन्हीं से आरंभ हुआ। नारी (माता) मे सोमतत्व की और पुरूष (पिता) में अग्नितत्व की प्रधानता है।[41] पति स्वयं (शूक्ररूप में) भार्या के गर्भ में प्रवेश करके पुत्र रूप में जन्म लेता है। इस कारण जाया[42] संज्ञा दी गई है। भागवतन पुराण में कहा गया है– ब्रह्मदेव अथवा आद्य प्रजापति के समाधि में निमग्न रहते समय उनके शरीर के दो समान विभाग हो गये, उनमें से रूप विभाग मनु थे तथा स्त्री रूप विभाग शतरूपा। ये ही मानव के आदि पूर्वज थे तथा आगे चलकर इन्हीं से समस्त प्रजा की उत्पत्ति हुई।[43] ऐतरेय ब्राह्मण जाया गार्हपत्यः कहकर पत्नी को संबोधित करता है। जब तक जाया नहीं प्राप्त होता है, तबतक व्यक्ति अपूर्ण समझा जाता है–

यावत् जायां न विंदते। असर्वोहि तावद् भवति।

गृहिणी से रहित गृह अरण्य– सदृश कहा गया है। भार्या सदृश न तो कोई बंधु है और न ही भार्या सदृश धर्म संग्रह में सहायक अन्य कोई। आनन्दरामायण में राम और सीता के विलासभाव के प्रदर्शन हेतु एक स्वतंत्र काण्ड विलासकाण्ड ही प्रस्तुत है, तो चंडी का रूप धारण कर सीता द्वारा मूलकासुर का वध की दिखलाया गया है। सीता के साथ–साथ नारियों के औदार्य तथा वीरत्व का परिचयक भी यह घटना है। दुर्गा सत्पशाती में ही चंडी रूपा भगवती का सिंहनाद श्रवणीय है–

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ़ मधु यावत्पिवाभ्यहम्
मया त्वयि हतेत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः।।
तथा
यो मां जयति संग्रामे यो में दर्प व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलों लोके स मे भर्ता भविष्यति।।

आनन्दरामायण में स्त्रियां अपने सौभाग्य के लिए सौभाग्यवशयन व्रत करती थी तथा पुत्र सुख की प्राप्ति के लिए उत्सव के साथ विधान पूर्वक यह व्रत करती थी। माता अपने पुत्रों की मंगल कामना, देवाराधन तथा शास्त्रोचित संस्कार के समय विधि–विधान से कार्य सम्पन्न होने की आराधना करती थी।

नारी का वैधव्य जीवन अत्यन्त ही दुखद अशोभन होता है आनन्द रामायण में भी ऐसा ही कहा गया है। स्कंदपुरण के अनुसार भी विधवा हो जाना दुर्भाग्य का सूचक है। इतना तक कहा गया है क सौ पुत्रोंवाली माता माता भी यदि विधवा हो जाय तो उसका जीवन निरर्थक माना जाता है। इसीलिए समाज में विधवाओं की दुःस्थिति को जानकर अनेक स्त्रियाँ पति की मृत्यु के उपरान्त पति के साथ ही सथ जीवित ही जल मरती थी। स्कंदपुराण में शती प्रथा की सूचना अनेक स्थानों पर प्राप्त होती है। विशेष कर युवावस्था में जब पति की मृत्यु हो जाती थी, तब स्त्रियॉ पति के साथ ही जल मरती थी। एकांत में जहॉ कोई सहायक नहीं होता था, वहां नारी स्वयं ही चिता तैयार कर पति के साथ जल जाती थी।

अनन्दरामायण में सधवा स्त्रियों को अपने अपने पतियों के साथ चिता की अग्नि में जलकर स्वर्गलोक जाने की बात कही गयी है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में आलोच्यकाल तक भारतीय नारी सामाजिक और शास्त्रीय अनुशासन में जीवन व्यतीत करती रही। भारतीय संस्कृति की संरक्षा में सदैव होम होती हुई कुंदन सी चमकती रही तो आश्रमों के कर्तव्य निर्वाह में समुचित सहयोग करते हुए भी अनेकानेक अधिकारों और कर्तव्यों से वंचित कर दी गयी और अनेक प्रतिबंधों से बॉध दी गयी। आपस्तम्ब धर्मसूत्र का निर्देश है कि धर्म प्रजा–युक्त पत्नी के रहते हुए दूसरी स्त्री से विवाह नहीं करना चाहिए। तो नारद का मत है कि अनुकूल अवाग्दृष्ट गृह कार्य में कुशल साध्वी प्रजावती पत्नी का त्याग करने वाले पति को कठोर दंड से राजा उचित मार्ग पर रखे के बावजूद पुरूषों ने ही एक पत्नीव्रत के नियमों को तोड़ा है और पूर्वमध्य युगीन स्मृतिकार देवल ने शद्र की एक वैश्य की दो, क्षत्रिय की तीन, ब्राह्मण को चार और राजा को यथेष्ट पत्नी होने की बात कह दी। भारतीय धर्म, लोकाचार, सच्चरित्रता और नैतिकता का सभ्य हिन्दू समाज में इतना अधिक प्रभाव रहा है कि विवाहिता स्त्री के लिए एक पति के अतिरिक्त दूसरे को मन में लाना या सोचना भी घोर पाप स्त्रीत्व के विरूद्ध समझा जाता रहा है। हिन्दू स्त्री के जीवन का आदर्श और गौरव उसके एक पतित्व में निहित था, जिसका आदर्श चित्रण और विचारों का प्रक्षेपण आनन्दरामायण में सर्वत्र हुआ है। इतना तक कहा गया है कि वाल्यकाल में सीता तक्ष्मणं के साथ दुःख भोगने के लिए यात्रा नहीं की थी बल्कि संसारिलोगो को यह उपदेश देने के लिए कि परिश्रमसाध्य होन पर भी पिता की बात माननी चाहिए। दुष्टा कैकेयी तथा राज्य तिलक में विघ्न डालनेवाली पापिनी मंथरा को वध करने का पराक्रम क्या मुझमें नहीं था? पर उनको दंड ने देकर मैने संसार को यह शिक्षा दी कि स्त्री का वध कभी भी नहीं करना चाहिए और अपनी सौतेली मॉ की आज्ञा का भी उसी तरह पालन करना चाहिए जिस तरह अपनी सगी माता का करते हैं।

यह कथन स्थापित मार्यादा और नारी के आदर्श रूप को प्रत्यक्षतः प्रगट करता है तथा सामाजिक जीवन में नारी के विभिन्न अवस्थाओं का भारतीय संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में देखने का दृष्टि प्रदान प्रदान करता है।

**निष्कर्ष–** इस प्रकार आर्य–संस्कृति और व्यवहार में पुरूष–मर्यादा से नारी–मर्यादा सदा ही उत्कृष्ट मानी गयी है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्त सर्वास्तत्रनिष्फलाः क्रियाः।।

अर्थात् जिस घर या समाज में नारियों का समादर होता है, वहाँ देवात प्रसन्न रहते हैं और जहाँ ऐसा नहीं होता वहाँ समस्त क्रियाएँ व्यर्थ होती है।

**संदर्भ –**


1. ऋग्वेद, 10/159–3।
2. अथर्ववेद, 10: 3/30, 2/1/25।
3. अत्रैव, 11/5/18 (अर्थववेद)।
4. ऋग्वेद, 1/123/5।
5. अत्रैव, 10/10, 4/43/6, 6/55/45, 10/162/5।
6. तत्रैव, 6/5/8/2।
7. तथैव,33/1।
8. संभवे स्वजन दुःखकारिका..... हृदयदारिकापितु।
9. हर्षचरित, 4 पृ0 140 – 41।
10. वा0रा0 उत्तराकाण्ड, 9, 10।
11. आ0 रा0 राज्यकाण्ड, 19/124–26।
12. अत्रैव, मनोहरकाण्ड, 6/229–30।
13. अत्रैव, सारकाण्ड, 3/189–192।
14. महाभारत, 12/11/ ।
15. अत्रैव, 1/159/11।
16. (1) अत्रैव, 4/1/13(2) स्कन्दपुराण काशीखंड पूर्वाद्र, 40/34–35।
17. अत्रैव, सारकाण्ड, 3/59–60।
18. आ0रा0 मनोहरकाण्ड 12/73।
19. आ0 रा0 पूर्णकाण्ड, 2/75–76 ।
20. अत्रैव मनोहरकाण्ड, 6/204–5
21. मनुस्मृति 9/3।
22. अत्रैव, मनोहरकाण्ड, 10/27।
23. अत्रैव, मनोहरकाण्ड, 10/29।
24. अत्रैव, जन्माकण्ड 4/19।
25. अत्रैव, जन्मकाण्ड, 4/14–15।
26. द्रष्टव्य–ब्रह्मखंड सेतुमाहात्म्य वर्णन – 4/16।
27. स्कंदपुराण अवान्ती खंड, चतुशीतिलिंग माहात्म्य, 78रु35–36।
28. तथैव, जन्मकाण्ड, 8/15।
29. तथैव, जन्मकाण्ड, 8/15।
30. वा0 रा0 1/29/18 ।
31. वा0 रा0 2/29/17।
32. वा0 रा0 2/39/21।
33. अत्रैव, 2/67/11–12।
34. अत्रैव, जन्मकाण्ड, 3/34।
35. अत्रैव, जन्मकाण्ड, 3/25–27।
36. अत्रैव, जन्मकाण्ड, 3/28–30।
37. अत्रैव, राज्यकाण्ड, 22/84।
38. अत्रैव, राज्यकाण्ड, 22/65–66।
39. (1) आ0 रा0 सारकाण्ड, 1/141–42 (2) अत्रैव, 9/144–45।
40. वावस्पति गैरोला, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ0 396–97।
41. (1) महाभारत, आदिपर्व, 74/37 (2) अत्रैव, वनपर्व, 12/70।
42. श्रीमदभागवत, 3/12, 1/52/53।
43. शतपथ ब्राह्मणं 5/2/1/10।